Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 4.94
ISSN No. 2456-1665

'लोकगीतों की ऐतिहासिक धरोहरः कुछ खोता कुछ पाता गॉव'

डॉ. दत्तात्रय फुके
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
राजर्षी शाहू महाविद्यालय पाथ्री, तहसील–फुलंब्री
जिला–औरंगाबाद–431111 (महाराष्ट्र)
मो. 09637174444
drdnphuke@gmail.com

सारांश :

डॉ. रामप्रसाद मिश्र का 'कुछ खोता कुछ पाता गॉव' यह एक आंचलिक उपन्यास है। इसमें कानपुर जनपद के गोपालपुर का व्यापक चित्रण हुआ है। लोकगीत, समाज, राजनीति, तीज–त्यौहार, धर्म, किवदंतियॉ इत्यादि का संगुंफन इस उपन्यास में है। तत्कालीन समय का इतिहास तथा ग्राम संस्कृति को जीवित रखना उपन्यासकार का उद्देश्य रहा है। गॉवों के विलुप्त हो रहे लोकगीत, तीज–त्यौहार आदि को संजोने का कार्य उपन्यास द्वारा किया गया है। रचनाकार साहित्य एवं संस्कृति के गंभीर अध्येता, विवेचक एवं विश्लेषक थे। उन्होंने संस्कृति को खण्डों में न देखकर एक परम्परा में देखा है। उन्होंने कानपुर, निबोई तथा आसपास के परिसर में होनेवाले अनेक उत्सवों तथा त्यौहारों, मेलों, लोकगीतों और वहॉ के प्रचलित लोक कथाओं के माध्यम से संस्कृति को मूर्त रुप दिया है। 'कुछ खोता कुछ पाता गॉव' उपन्यास आंचलिक तो है किन्तु आंचलिकता के साथ नगर से भी जुडा हुआ है। गॉव को केंद्रित करके ग्रामीण समाज के परिवर्तन को चित्रित करता हुआ उपन्यास नगर से महानगर तक अनेक पात्रों के माध्यम से पहुॅच जाता है।

डॉ. मिश्र जी ने गोपालपुर गॉव के माध्यम से बताया कि भारतीय समाज स्थिर नहीं है, गतिशील है। स्वतंत्रता के पश्चात् गॉवों में बड़ा परिवर्तन हुआ है। वर्तमान समय में छुआछूत की समस्या कुछ मात्रा में अवश्य कम हुई है। गॉवों के लोगों ने इसके बदले कुछ खोया भी है, इसमें सामाजिक व्यवहार, लोकगीत, तीज–त्यौहार, पारम्परिक पर्व आदि। इन उत्सवों में जो आनंद, उत्साह था वह अब समाप्त हो गया है, उसकी जगह रस्म अदायगी हो गई है। पहले गॉवों में होली एक साथ मनाई जाती थी, अब वह उत्सव बॅट गया है। गॉव के लोकगीत, तीज–त्यौहार, उत्सव आदि गॉवों के जीवन्तता के प्रतीक थे। यह समाप्त होते जा रहा हैं जिसके कारण हमारा जीवन शुष्क बनता जा रहा है।

संकेताक्षर :

लोकगीत, ग्राम संस्कृति, तीज–त्यौहार, उत्सव, गॉव, मॉ, होली, विवाह, बृंदाबन, स्त्रियॉ आदि।

भूमिका :

उपन्यास अपने समय का दस्तावेज होता है, जो सदैव परिवर्तित होता रहता है। मानव जीवन की गहनता व व्यापकता का पता लोक–साहित्य से चलता है। डॉ. रामप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित 'कुछ खोता कुछ पाता गॉव' उपन्यास में इस बदलते हुए समय और समाज का संवदनशीलता के साथ अंकन किया गया है। डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय ने लिखा है, "लोकगीतों के अर्थ में ग्रामगीत या ग्राम्यगीत शब्द प्रचलित है। अंग्रेजी में Folk Song, Folk Music, Folk Dance आदि मे आए हुए **Folk** का अर्थ आदिम जातियॉ किया जाता है। आदिम जातियों के भद्दे गीतों, कर्कश संगीत और तारतम्य–हीन नाच को इन शब्दों द्वारा व्यंजित किया जाता है। वस्तुतः इस अर्थ में ये शब्द अत्यन्त संकीर्णता ध्वनित करते हैं। लोक–गीत सामूहिक चेतना के सहज उद्‌गार हैं इसलिए उन्हें आदिम या परवर्ती जातियों के साथ सम्बध्द देखना अध्ययन की अवैज्ञानिक परम्परा है। यह ठीक ही कहा गया है कि आदिम जाति के लिये ही "फोक सांग्स" की

अर्थसत्ता को सीमित रखना संकीर्णता एवं आभिजात्यवर्ग के अभिमान का परिचायक हो सकता हैं।"[1] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, "ग्रामगीत आर्येत्तर सभ्यता के वेद है।"[2] डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार "जन समुदाय में प्रचलित परंपरागत गीत।"[3] रामनरेश त्रिपाठी लिखते है, "ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं।"[4] देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा हैं, "लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोले चित्र हैं।"[5]

लोकगीतों की ऐतिहासिक धरोहर :

'कुछ खोता कुछ पाता गॉव' लोकगीतों को चित्रित करने वाला महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमे गोपालपुर गॉव और आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित लोकगीतों का चित्रण किया है। वहॉ के लोग विभिन्न अवसरों, त्यौहारों, उत्सवों आदि पर इन लोकगीतों को सुनते है। इस उपन्यास में बीस–इक्कीस लोकगीतों का चित्रण रचनाकार ने किया है। इन लोकगीतों में होली, विवाह, बारहमासा, स्त्रियों के मार्मिक गीत आदि आते है। उपन्यास के सभी लोकगीतों को न देखते हुए हम कुछ चुनिंदा लोकगीतों को यहॉ देख रहे है। इस अवसर पर लोगों द्वारा फ़ाग गाया जा रहा है। पवन में वसंत का अनुभवगम्य किंतु अदृश्य नृत्य हो रहा है। आम बौरा गए हैं। धाम बौरा गए हैं। गोपालपुर का बौरा जाना विशेष स्वाभाविक हैं। मुखिया की चौपाल पर भारी भीड़ है। फ़ाग गाया जा रहा है :

"मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ, मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ !
बृंदाबन बेली चम्प–चमेली गुलदावली गुलाबन मॉ
गेंदा गुलमेंहदी गुलाबास गुलखैरा फूल हजारन मॉ
कदली कदम्ब अमरूद तूत फूले रसाल तरुसाखन मॉ
भौंरा गुलजार बिहार करैं, रसु लेत फूल फल पातन मॉ
मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ, मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ
आगन बागन मॉ जे लटके फल लागत डार पतूखन मॉ
फबकी फुलवारी लौंग सुपारी ब्योपारी ब्योपारन मॉ
माली के लड़के तोड़ैं तड़के बेचैं हाट बजारन मॉ
मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ, मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ
बृंदाबन मॉ बंसीबन मॉ मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ।
दिहे रेख कज्जल की राधा पीताम्बर सोहै तन मॉ
जहॅ दामिनि की दुति खानि भरी ॲगिया भलि सोहै जोबन मॉ
बिरहा की उठति उमंग अंग राधे मुसक्याय दियो मन मॉ
मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ, मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ
बृंदाबन मॉ बंसीबन मॉ मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ।
संग चलैं इछुलैं बिछुलैं जमुनातट खोह कगारन मॉ
तपसी कोउ जंगल जोर जती जहॅ ध्यान धरैं पदमासन मॉ
बोलैं बिहंग छबि रंग रंग किलकैं कदम्ब की साखन मॉ
सीतल सुगंध गति पवन मंद रस लेत सिवा के केसन मॉ
मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ, मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ
बृंदाबन मॉ बंसीबन मॉ मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ।
खेलत फ़ाग मदन मनमोहन मुरली कटैं मृदंगन मॉ
कछु अतर सुगंधन मॉ अमकैं गमकैं कछु ताल मजीरन मॉ
जहॅ रंगरॅगीले हैं छोहरा पिचकारी हनैं कहुॅ खुलन मॉ
सियरामराम रट लागि रही होरी खेलैं गोपी ग्वालन मॉ
बृंदाबन मॉ बंसीबन मॉ मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ।
मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ, मनु बसो म्वार बृंदाबन मॉ।"[6]

नागपंचमी के त्यौहार पर उपन्यास के प्रमुख पात्र मुखिया तथा पंडाजी शर्बत पी रहे है। इधर, रसना रसपान कर रही थी उधर श्रुतियॉ काव्यारसपान, क्योंकि कुछ ही दूरी पर वही असाढ़ीवाला भारी झूला पड़ा था, जिस पर झूलती युवतियॉ बारहमासा गा रही थी :

"सावन मास, सहेलरि ! सखियॉ झूलै रंग हिंडोल,
जब सुधि आवै बारे बलम की मोरे जिय उठै किलोल।
भादों मास अगम भै बरखा सूझै आर न पार,
बाढ़ि नदी नैनन भरि आई, ढहि–ढहि गिरैं कगार।
क्वॉर मास जल सूखन लागे, पतियॉ लिखौ बनाय,
स्याम बिना मेरी सॉस धौंकनी–सी आवै औ जाय।
कातिक पख उजियारा, सजनी ! चंदा उवै अकास,
तुलसी–दियना बारि कै बैठी भक्ति नरायन पास।
अगहन मास सनेहरी, सजनी ! करौ पिया की आस
अपने पिया को ढूँढ़न जइबे, करिबे ब्रत–उपवास।
पूस पटोलि मैलि भइ, सजनी ! छूटि पिया कै आस,
ऐ बिधना ! मोरे पंख लगा दे जाउँ हंस के पास।
माह मास के सेये जोबना नेक धरत ना धीर,
सगरि राति मोरि तड़फत बीतैं उठै करेजे पीर।
फागुन फगुवा होई रहो, सजनी ! सब मिलि खैलैं फ़ाग,
अपने पिया सॅग होरी खैलैं, मोरे हिरदै आग।
चैत मास बन टेसू फूलैं, सेंदुरी देयॅ उड़ाय,
हूक उठति मोरे हियरा में, नैनन ऑसू छाय।
बैसाख मास मॉ कोइल कुहकै, मैं पथ रही निसार,
अपने पिया की सेज सॅवरतिउॅ सोउतिउॅ गोड़ पसार।
जेठवा तपै मृगसिरा, सजनी ! कड़ा नखत का घाम,
चुवै पसीना, ऊबि गयो मन, लेहु पिया ! अब घाम।
असाढ़ मास बन बोलै पपीहा, मिलै बिदेसी मोर,
साजि आरती सनमुख, कहिबे, 'तन–मन–जोबन तोर !' "[7]

दैनंदिन जीवन में स्त्रियों द्वारा गाया जा रहा मार्मिक लोकगीत का चित्रण उपन्यासकार ने किया है :

"बारी मोरी बैस राज छतरपुर छाय गए।
बारी मोरी बैस राज छतरपुर छाय गए।।
अरे बागा पुराने ह्वै गए, पुराने ह्वै गए,
टूटन लागी डार राज छतरपुर छाय गए।
बारी मोरी बैस राज छतरपुर छाय गए।।
अरे कुँवनॉ पुराने ह्वै गए, पुराने ह्वै गए,
हालन लागे मरुवा राजा छतरपुर छाय गए।
बारी मोरी बैस राज छतरपुर छाय गए।।
अरे महला पुराने ह्वै गए, पुराने ह्वै गए,
सरकन लागी ईंट राजा छतरपुर छाय गए।
बारी मोरी बैस राज छतरपुर छाय गए।।
अरे रनियॉ पुरानी ह्वै गए, पुराने ह्वै गए,
लचकन लागी बैस राजा छतरपुर छाय गए।
बारी मोरी बैस राज छतरपुर छाय गए।।"[8]

विवाह आदि उत्सव पर स्त्रियों द्वारा गाना–बजाना एक पारम्पारिक रिवाज है। रचनाकार ने इसी परम्परा को विवाह के विविध प्रसंगों में स्थानियता को अपनाया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र रमाकांत के विवाहपूर्व प्रसंग मे स्नान–लोकगीत स्त्रियॉ गाती है :

"उबटनु डलिया औ मलिया मइलु छुटावै।
को यहु कुवनॉ खोदायो, को यहु घाटु बॅधायो,
केहि के भरहीं कहरियॉ, लाड़िले हनवावें ?
आजा ने कुवनॉ खोदायो, बाबा ने घाटु बॅधायो,
दादुली की भरहीं कहरियॉ लाड़िले हनवावैं।
चाचा ने कुवनॉ खोदायो, भइया ने घाटु बॅधायो,
जीजा की भरहीं कहरियॉ लाड़िले हनवावैं।
नाना ने कुवनॉ खोदायो, मामा ने घाटु बॅधायो,
मौसा की भरहीं कहरियॉ लाड़िले हनवावैं।"[9]

इस उपन्यास के नायक मुखिया के विवाह में स्त्रियॉ लोकगीत गाती है, क्योंकि बारातियों के भोजन करत समय वातावरण आनंदमय हो :

"कॉधे कुल्हरिया धरौ बढ़इया भइया बो ही बृंदावन जाव !
चंदन रुखवा कटायो बढ़इया भइया पटुली गढ़या सौ साठि
आधी पटुलिया मॉ रतन जड़ों है, आधी जड़ो जरपोस
पॉतिन–पॉतिन परि गईं पटुलियॉ, बइठे सजन जॅघजोरि
पान की पतरी, छिउल के दोना, लॅगॅउन टोब टोबाई
कुॅदुरू औ कतरैं, भॅटवा, रसाजैं बेसन बरन बनाई
बरा–मुगौरा दही मॉ बोरे मेवा अधिक मिलाई
दालि–भातु–मैदा के फूलका घी की रही अधिकाई
निहुरे–निहुरे परसैं औधबिहारी धोतिया मइलि होय जाई
निहुरे–निहुरे परसैं गोपाल धोतिया मइलि होय जाई
धोतिया मइलि होय, होई जाय देव, अइसे सजन कहॅ पाई
गंगा मॉ धोबन, जमुना हिलोरब, सुखवब लॅउॅग की डार....."[10]

विवाह प्रसंग का अंतिम दृश्य बिदाई है। भारतीय जीवन का एक सर्वाधिक मार्मिक दृश्य बिदाई, इर्ष एवं वैकल्य की संगम–स्थली बिदाई, दाम्पत्य पावित्य की प्रतीक बिदाई ! मुखिया और सरला के विवाह की बिदाई, मार्मिक विरहगीत में अनेक लोचनों में आंसू दिख रहे थे :

"हम तो माया मोरी बन की चिरइया आजु उड़त धौं काल्हि !
जइसी सुधि राख्यो माया गोदी के बलकवा तइसी सुधि राख्यो हमारि
गोदी क बलकवा बिसरि जाई बेटी सुधि नॉही बिसरी तुम्हारी
जइसी सुधि राख्यो दादुलि हर की हरइनी तइसी सुधि राख्यो हमारि
हर की हरइनी बिसरि जाई बेटी सुधि नॉही बिसरी तुम्हारी।
हम तो माया मोरी बन की चिरइया आजु उड़त धौं काल्हि।
जइसी सुधि राख्यो भइया खेलत के गेंदवा तइसी सुधि राख्यो हमारि
खेलत क गेंदवा बिसरि बिसरि जाई बहिनी सुधि नॉही बिसरी तुम्हारी
जइसी सुधि राख्यो भाभी माथे की बेंदिया तइसी सुधि राख्यो हमारि
माथे की बिंदया नॅहीं बिसरै ननदी सुधिया तौ बिसरी तुम्हारि।
हम तो माया मोरी बन की चिरइया आजु उड़त धौं काल्हि।

ददूली ने दीन्हों है नौ मन सेनवॉ माया ने लहर पटोर
भइया ने दीन्हों चढ़त का घोड़िला भाभी सेंधउरा भरि दीन्हॅ
ददूली का सोनवॉ जलम भरि खइबे पहिरब लहर पटोर
भइया के घोड़िला ते नगरी खुॅदइबे सेंदुरा ते भरि लेबे मॉग
हम तो माया मोरी बन की चिरइया आजु उड़त धौं काल्हि।

माया के रोइबै मॉ छतियॉ फटित हैं ददुली के सागर–ताल
भइया के रोइबे मॉ जिगरा दुखत है भाभी खड़ी मुसकायॅ
माया कहैं बेटी नित उठि आयो ददुली कहैं छठे मास
भइया कहैं बहिनी उछहे–बियाहे भाभी कहैं का कामु।
हम तो माया मोरी बन की चिरइया आजु उड़त धौं काल्हि !

माया रावैं अॅतरे–कोंतरे ददुली रोवैं चउपार
सखियॉ रोवैं छेड़ियन–कोलियन सूने अब सावन हमार
भइया रोवैं पलकी घुमावत कहॉ चली बहिनी पियारि
भाभी रोवैं मन समुझावैं भले गई ननदी हमारि।
हम तो माया मोरी बन की चिरइया आजु उड़त धौं काल्हि।"[11]

शाम के समय रमाकांत को खेतों की मेड़ों पर टहलने की आदत थी। पास ही के पुरवे से लोकगीत के मधुर स्वर सुनाई देते है :

"पालना घलवइबे लाल का,
पालना घलवइबे लाल का।

जब मोरे लाल बबा कहि टेरैं,
बाहर से ससुर बोलइबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।

जब मोरे लाल दादी कहि टेरैं,
रुठी सास मनइबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।
जब मोरे लाल चाची कहि टेरैं,
न्यारे ते जेठनी बालइबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।

जब मोरे लाल बुआ कहि टेरैं,
दूरी से ननद बोलइबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।

जब मोरे लाल चाचा कहि टेरैं,
खेलत से देवर बोलइबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।

जब मोरे लाल दादा कहि टेरैं,
सोवत से बलम जगइबे लाल का–

पालना घलवइबे लाल का।

जब मोरे लाल अम्मा कहि टेरैं,
झपटिकै गोद उठइबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।

जब मोरे लाल घुटुरुवन चलिहैं,
फूलन गलियॉ झरइबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।

जब मोरे लाल जेंवन का मॅगिहैं,
सोने की थारी पासिबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।

जब मोरे लाल बियाहन जइहैं,
फुलि गरगजा होइबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।

जबहिं बहुरिया ब्याहि घर लइहैं,
आरती साजि उतरिबे लाल का–
पालना घलवइबे लाल का।"[12]

रमाकांत के विवाह के चौथे दिन स्त्रियॉ पूड़ी–कचौड़ी बेलने का काम समाप्त करके देवी पूजने के लिए मठिया की ओर लोकगीत गाती हुई चलीं जाती है :

"सॅझही भॅवरवा मइया उगरि चलो है,
मलिनी चली आधी राति हो री मॉ।
कहॅना री मालिनि रैनि गॅवाई,
कहॅना लगाई बड़ी देर हो री मॉ।।
कजरी के बन मइइया फूली फुलवारी,
फुलवा बिनत भई देर हो री मॉ।
फुलवा बिनत मइया भई है दुपहरी,
हरवा गुॅथत भई सॉझ हो री मॉ।
बासी फूल जनि लायो री मलिनियॉ,
टटके फूलन केरो हार हो री मॉ।।
कइसे क मइया जी का हार पहिरावौं,
कइसे चरन गहि लेवॅ हो री मॉ।
बइठि कै मइया जी क हार पहिरावौं,
निहुरि चरन गहि लेव हो री मॉ।।
मॉगन होय सो मॉगौ री मालिनि,
आजु मॉगो सोई पाव हो री मॉ।
अन्न–धन्न मइया, तुम्हारो दियो हैं,
मलिया अमर करि देव हो री मॉ।।
ई जुग मालिनि तीनि अमर हैं,

आगी, पवन, गंगानीर हो री मॉ।
जेतने फल मइया अमवा क दीन्हों,
बालक खेलैं तोरी गोद हो री मॉ।
सॅझही भॅवरवा मइया डगरी चलो है,
मलिनी चली आधी राति हो री मॉ।।"[13]

सारांश :

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि भागदौड़ भरी जिंदगी में सभी को जल्दी है। वर्तमान समय में भारत के महानगरों से दूर लगभग सभी गॉवों में लोकगीत ऐतिहासिक धरोहर बनते जा रहे है। कहने का तात्पर्य है कि शहरी प्रभाव के कारण ण्अब किसी के पास इतना समय नहीं है कि वे अपनी परम्पराओं, रीतिरिवाजों को मना सके। सभी को जल्दी है। शहरी सभ्यता एवं आधुनिक शिक्षा, बाजारीकरण, वैश्वीकरण के कारण लोग अपने लोकगीत, सनातन रीतिरिवाजों, परम्पराओं से धीरे–धीरे दूर होते जा रहे है। इसलिए रमाकांत उपन्यास के अन्त में इस बदलते ग्रामीण रीतिरिवाजों के बारे में कहता है, "बिना खोए पाना संभव नहीं। नया युग कुछ खो रहा है, कुछ पा रहा है। जो खो रहा है उसमें सब बुरा–ही–बुरा हो, यह संभव नहीं। जो पा रहा है उसमें सब अच्छा–ही–अच्छा हो, यह भी संभव नहीं है। इस विनिमय के हानि–लाभ की मीमांसा सरल नहीं..."[14] उपन्यास अपने समय और गॉवों के सत्य से साक्षात्कार कराता है। इन लोकगीतों को बचाने तथा भविष्य की नई पीढ़ी के लिए उस लोकगीतों से परिचित कराने के उद्देश्य से डॉ. रामप्रसाद मिश्र ने लोकगीतों का व्यापक चित्रण इस उपन्यास में किया हैं। सांकेतिक रूप से ही नहीं, स्पष्ट वर्णन के स्तर पर भी लोकगीतों की ऐतिहासिक धरोहर है डॉ. रामप्रसाद मिश्र का 'कुछ खोता कुछ पाता गॉव'।

संदर्भ :

1. डॉ. चन्द्रशेखर भट्ट, हाड़ौती लोकगीत, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, (प्रथम संस्करण, नवम्बर 1966), पृ. 26
2. उपरोक्त, पृ. 27
3. डॉ. हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्दकोश, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, उन्नीसवां संस्करण, 2004, पृ. 727
4. डॉ. चन्द्रशेखर भट्ट, हाड़ौती लोकगीत, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, (प्रथम संस्करण, नवम्बर 1966), पृ. 27
5. देवेन्द्र सत्यार्थी, आजकल (दिल्ली) सं. 7, नवम्बर,1951
6. डॉ. रामप्रसाद मिश्र, कुछ खोता कुछ पाता गॉव (आंचलिक उपन्यास), इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स दिल्ली, (प्रथम संस्करण, 2000), पृष्ठ 1–2
7. उपरोक्त, पृष्ठ 177–178
8. उपरोक्त, पृष्ठ 195
9. उपरोक्त, पृष्ठ 327
10. उपरोक्त, पृष्ठ 214
11. उपरोक्त, पृष्ठ 215–216
12. उपरोक्त, पृष्ठ 149–150
13. उपरोक्त, पृष्ठ 330–331
14. उपरोक्त, पृष्ठ 385–386